स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।। किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।।

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास— गोविन्द १४, वार— वासुदेव
रविवार, ३० माघ, सम्वत् २०२८, १३ फरवरी, १९७२ | संख्या ६

फरवरी १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्रांशि

श्रीनारदस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।६९।१७.१८,३८,३९)

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ।।१७।।

देवर्षि श्रीनारदजी भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहने लगे—

हे विश्वकीर्तिस्वरूप ! हे विभो ! निखिल लोकाधिपति आपका सज्जनोंके प्रति सुहृद्भाव एवं दुष्ट-व्यक्तियोंके प्रति दण्डविधान विचित्र नहीं है। जगतकी स्थिति, पालन और परम मंगल करनेकी अपनी तीव्र इच्छासे आपका यह शुभ अवतरण हुआ है, यह बात हम सम्यक् प्रकारसे अवगत हैं ।।१७।

दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥

हे प्रभो ! आपके श्रीपादपद्मयुगल असीमज्ञानसम्पन्न ब्रह्मादि योगेश्वरोंके लिये भी हृदयमें चिंतनीय हैं, भक्तोंके लिये अपवर्गस्वरूप हैं, और संसारकूप-निमग्न व्यक्तियोंके उद्धारके लिये एकमात्र अवलम्बन स्वरूप आपके इस श्रीपादपद्मयुगलके दर्शन मात्रसे ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। तथापि जिससे निरन्तर आपके पादपद्म स्मृतिपथमें जागरूक रहें, आप ऐसा अनुग्रह करें। ऐसा होने पर मैं सर्वदा इनका ध्यान करता हुआ जगतमें विचरण करूँगा ॥१८॥

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥३८॥

हे योगेश्वर ! हे परमात्मन् ! आपके पादपद्मोंके परिसेवनके बलसे हमारे हृदयमें मायामुग्ध जीवों के द्वारा दुर्दश आपकी योगमायाका प्रभाव अनुभूत होनेके कारण हम उसे जानने में समर्थ हुए हैं ॥३८॥

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायन् लीला भुवनपावनीः ॥३९॥

हे देव ! मैं आपकी त्रिलोकपावनी लीलाओंका ऊँचे स्वरसे कीर्त्तन करते हुए आपकी यशोराशि परिपूरित भुवनमण्डलमें पर्यटन करूँ, इसके लिये आप मुझे अनुमति प्रदान करें ॥३९॥

॥इति श्रीनारदस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति श्रीनारदजीका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

कृपा की झलक

अज्ञानसे अँधेरा छाया जो मेरे मन पर,
अपनी कृपासे भगवन् उसे दूर हटा देना ।
माया यह आपकी सबको लुभा रही,
करके कृपा, कृपामय मुझे इससे बचा लेना ॥
कब तक जगतमें भगवन् यूँ ही पड़ी रहूँगी-
अपराध सब भूलकर मुझे पार लगा देना,
अपनी छटाका मुझको सुप्रकाश दिखा देना ।
भगवन् अपनी माया का दृश्य हटा लेना,
करके कृपा,कृपामय मुझे इससे बचा लेना ॥

कु० सरोज 'गुप्तेश'
(शोध-छात्रा जयपुर)

श्रीगुरुपादपद्मकी अपार महिमा

प्रत्येक जीव हृदयमें क्षीरोदशायी अनिरुद्ध विष्णु वास करते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्में जीव और भगवानका अविच्छेद्य सम्बन्ध एवं परस्परका नित्य युक्तावस्थान कथित है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

प्रत्येक जीवात्मामें दो वस्तुयें हैं—सेव्य और सेवक। प्रत्येक जीवके लिए हरिसेवाको छोड़कर दूसरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। भगवानको रुपयेमें सोलह आना पूर्ण सेवा प्रदान करना ही भक्तका कर्त्तव्य है। कर्मकाण्डी व्यक्ति प्रभुकी सेवाको स्वयं ही ग्रहण करते हैं। भक्ति न रहने पर हम भगवान्‌की वञ्चना कर हम लोग स्वयं ही जगतको भोग करते हैं। कर्मकाण्डमें अवस्थान-कालमें स्वय ही फलभोक्ता सजकर हम लोग दूसरेके ऊपर प्रभुत्व करते हैं। जन्मैश्वर्य-श्रुत-श्रीके अभिमानमें मत्त रहने से एवं अपनेको प्रभु एवं गुरुबुद्धि करनेसे जीवमात्रको कृष्णके अधिष्ठान समझकर सम्मान-प्रदान करनेके बदलेमें उनके निकटसे सम्मान और अभिवादन ग्रहण की स्पृहा बलवती होती है। दूसरों द्वारा अभिवादन करने पर उन्हें प्रत्यभिवादन करना चाहिए। प्रत्येक जीव-हृदयमें जीवोंके परम प्रभु विष्णु वर्त्तमान हैं। उन प्रभुको उद्वेग देना किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है। किसी भी प्राणीको हीन समझकर या असूया के कारण कष्ट देना या अवज्ञा करना उचित नहीं है। अपने अन्तःस्थित प्रभुके प्रति सेवोन्मुख होकर वास करना चाहिए। गाय, घोड़े, गधे, और चण्डाल तक सभीको विष्णुका सेवक जानकर नमस्कार करना चाहिए। क्षुद्रादपि क्षुद्र जीवके हृदयमें भी भगवान् वर्त्तमान रहते हैं। भगवान्‌के प्रति सेवाविमुख होनेके कारण ही इन जीवोंको lower creation (नीचे योनि) में जाना पड़ा है। चारों वर्णाश्रम भगवान् विष्णु से ही उत्पन्न हुए है। जीव आत्मविस्मृत होकर अपने आप को 'कर्त्ता' मान बैठते हैं। उस समय भूतोद्वेग या श्रीगोविन्द सेवक वैष्णवोंके ऊपर भी प्रभुत्व विस्तार करनेकी इच्छा होती है। कृष्णदास जीवको उद्वेग प्रदान करनेसे कृष्ण-सेवा नहीं होती। इसलिए शास्त्रोंमें कहा गया है—

'प्राणिमात्रे मनोवाक्ये उद्वेग ना दिबे।'

लौकिक श्रद्धानुसार जो अर्चामूर्त्तिमें हरि-पूजा करते हैं, किन्तु हरिभक्त और हरिके अधिष्ठानस्वरूप अन्य जीवके प्रति श्रद्धा और दया नहीं करते, वे कनिष्ठ हैं।

भगवान्‌के सेवक लोग उनके सेवकोंकी सेवा करते हैं। हरिसेवा विमुख व्यक्ति गुरु-दास नहीं हैं। इस मायिक जगतमें—इस विवादके युगमें हरिकथा व्यतीत इतर कथा की ही प्रबलता है। इसलिए हमारे लिए जीवनके शेष मुहूर्त्त तक इस विवादयुक्त जगतमें भगवान् अनन्तदेवकी कथा प्रचार

करके चला जाना उचित है। श्रीअनन्तदेव की कृपा होने पर एवं कृपाप्रार्थी व्यक्ति निष्कपट होने पर वे जीव मायायुक्त होकर उन्हें प्राप्त करते हैं।

आज हमारा आलोच्य विषय है—

वन्दे गुरूनीशभक्तानीशमीशावतारकान्।
तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्णचैतन्यसंज्ञकम्॥

जो लोग कृष्णचैतन्यदेवको गुरुमुखसे सुनकर सम्यक् प्रकारसे जाननेकी चेष्टा करते हैं, वे लोग यह जान सकते हैं कि अद्वयज्ञान तत्त्व श्रीकृष्णचैतन्य ही गुरुगण, ईशभक्त, ईश, ईशावतार, ईशप्रकाश और ईशशक्ति रूपसे प्रकाशित हैं। पारमार्थिक गुरुको छोड़कर जागतिक सभी गुरु भी मनुष्योंके सम्मानके पात्र हैं। भगवान्‌के शक्तिबलके कारण ही जागतिक विचारसे श्रेष्ठ राजा, पुरोहित और शिक्षक आदि सभी ही यथायोग्य सम्मानके पात्र हैं। जागतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी जागतिक गुरु की आवश्यकता है। पारमार्थिक जगतके लिए तो कहना ही क्या है? आध्यक्षिक चेष्टा द्वारा भगवान् को जाना नहीं जा सकता। इस जगतमें अवतीर्ण भगवदवतार और भक्तोंको जागतिक व्यक्तियोंके साथ समान ज्ञान करना अनुचित है। मध्यमाधिकारसे ही यथार्थ हरिभजन प्रारम्भ होता है। मध्यमाधिकारी ईश्वरके प्रति प्रेम, भक्तोंके प्रति मित्रता, बालिश (अज्ञ) व्यक्तियोंके प्रति कृपा एवं विद्वेषी व्यक्तिके प्रति उपेक्षाका आचरण करते हैं।

मैंने भगवान्‌की सेवा की, अतएव उसके बदलेमें उनके निकटसे कुछ अदा कर लूँगा, यह नारकीय विचार है। भगवान्‌के निकटसे सेवा ग्रहण करना नहीं होगा, बल्कि उनकी ही सेवा करनी चाहिए। जागतिक लोग नास्तिक होकर जल-वायु, पोषाक-परिच्छद आदि कितने ही प्रकारसे भगवान्‌की सेवा ग्रहण कर रहे हैं! अभक्त कर्मी और स्मार्त्त व्यक्तियोंका Ethical principle (मूल सिद्धान्त) ही यही है कि अपने सुख-सुविधा आदिके लिए ईश्वरको काट देकर कार्य करवा लेना। We think we are to receive or accept Service from the Universe which is his creation (अर्थात् हम ऐसा सोचते हैं कि हम लोग यह समग्र विश्व ब्रह्माण्ड जो ईश्वर की रचना है, इससे सेवा पाने के लिए या ग्रहण करनेके लिए ही वर्त्तमान हैं)। इतर प्राणी भी भगवान् की सेवाके लिए ही सृष्टि किए गए हैं। पशुओंको हमारी सेवामें नियुक्त करने पर भगवान्‌के प्रति अवज्ञा करना हुआ। Altruistic id a must be avoided. We must be altruist in the fullest and unalloyed sense. All so called religionists seek after altruism (अर्थात् जागतिक परोपकारके विचार का सर्वथा वर्जन करना होगा। हमें पारमार्थिक विचारसे पूर्णरूपसे एवं विशुद्ध रूपसे परोपकारी बनना होगा। आजकल प्रायः सभी ही तथाकथित धार्मिक व्यक्ति जागतिक परोपकार का ही अन्वेषण करते हैं)।

श्रीगुरुपादपद्मकी चिन्ताधारा जागतिक चिन्तास्रोतमें विप्लव आनयन करती है। श्रीगुरुपादपद्म ही हमें एकादश या ग्यारह परम रत्न का सन्धान प्रदान कर प्रचुर कृपा करते हैं। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभुने

श्रीगुरुपादपद्मकी वन्दनामें कहा है—

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपं रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्। राधाकुण्डं गिरिवरमहो ! राधिका-माधवाशां प्राप्तो यस्य प्रथित-कृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि॥

जागतिक गुरुवर्ग हमें मायिक वस्तुका सन्धान प्रदान कर सकते हैं, स्वर्ग और मोक्ष-का सन्धान प्रदान कर सकते हैं, किन्तु भगवान्‌के निजजन या श्रेष्ठको छोड़कर और कोई भगवान्‌का सन्धान नहीं प्रदान कर सकते। पूर्णतम गुरुपादपद्मका सन्धान नहीं प्राप्त करने पर छायास्वरूप मायिक गुरुके साथ साक्षात्कार होता है। भगवदभिन्न श्रीगुरुपादपद्म—भगवान्‌के श्रेष्ठ सेवक या भगवान्‌के परम प्रियपात्र हैं। भगवान् भी उनकी सेवा करते हैं। भगवान्‌की कृपा होने पर भक्त-भागवत और ग्रन्थ-भागवतके साथ साक्षात्कार होता है। भक्त-भागवतके आनुगत्य में ही ग्रन्थ-भागवत सेवनीय हैं। श्रीमद्-भागवतका स्वरूप और माहात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते। यत्र ज्ञान-विराग भक्ति- सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृन्वन् सुपठद्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥

(भा० १२।१३।१८)

अर्थात् श्रीमद्भागवत एकमात्र अमल-पुराण है। यह वैष्णवमात्रके लिए ही अत्यन्त प्रिय है। इसमें एकमात्र अमल परमहंसोचित ज्ञान वर्णित है। विरागके साथ नैष्कर्म्य ज्ञान इसमें आविष्कृत हुआ है। भागवतके श्रवण पठन और विचार करते करते भक्तिद्वारा जीवका मायाबन्ध दूर होता है।

श्रीगुरुपादपद्मकी प्रसिद्ध कृपासे भगवान् क्या वस्तु हैं, यह बात श्रौतपथके माध्यम से जान सकते हैं। अप्राकृत शब्दके श्रवण द्वारा ही अप्राकृत वस्तुकी अनुसन्धान-स्पृहा उदित होती है। मनुष्योंको श्रवण करनेका सुयोग देनेके लिए शब्दका आविर्भाव होता है। शब्द श्रवण करने के लिए कानोंकी आवश्यकता है। शब्द नहीं रहनेसे हम लोग वर्ण-मालाका व्यवहार नहीं कर सकते। विषयके अभावमें इन्द्रिय-चालना नहीं कर सकते। अमनोयोगीको मनोयोगी, बहिर्मुखको उन्मुख करने के लिए ही—विपथगामीको सुपथमें ले जानेके लिए ही गुरुवर्ग अप्राकृत शब्दका व्यवहार और अनुशीलन करते हैं। पाठशाला के बालक छात्र उपदेश-श्रवणमें अमनोयोगी होने पर पण्डित महाशय कान पकड़कर उसे मनोयोगी बनाते हैं। अप्राकृत शब्दविद् श्री-गुरुदेव भी बहिर्मुख और श्रीकृष्ण-भजनमें अमनोयोगी शिष्यके कानोंमें आघात प्रदान कर आकर्षण करते हैं अर्थात् श्रीगुरुपादपद्मकी जड़ विप्लवात्मिका वाणी श्रवण करनेमें पहले पहले शिष्यको बहुत कष्ट जान पड़ता है, किन्तु शिष्यको वेद श्रवण करानेके पहले आचार्य उसे अप्राकृत कर्णवेध-संस्कार प्रदान करेंगे। शिष्यके प्रति आचार्यका यही पहला कार्य है। Attention is drawn by pulling the ear. For mundane objects we impart mundane words (अर्थात् मनोयोग करानेके लिए कानोंमें शब्द द्वारा आघात किया जाता है। प्राकृत विषयोंके लिए हम प्राकृत शब्द प्रयोग करते हैं)। किन्तु श्रीगुरुपादपद्म हमें श्रेष्ठ नाम प्रदान करते हैं। वह वैकुण्ठनाम ही हमें अप्राकृत चिन्ताके राज्यमें ले जाता है।

कुछ वर्षोंसे शिशुओंको 'Kinder garten System' द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था हुई है। इसका उद्देश्य विभिन्न वस्तुओंकी सहायतासे शब्दोंका एवं शब्दोंकी की सहायतासे वस्तुके परिचयकी शिक्षा देना है। शिशुका मन बाह्य जगतके साथ अभिज्ञता-सूत्रमें आबद्ध नहीं होनेके कारण उस समय उसका कोई विषयके प्रति वैसा आग्रह उदय नहीं होता। काकके 'का', 'का' शब्द उसके कानोंमें प्रवेश करने पर वह कहाँ है और कैसा प्राणी है, यह जाननेकी स्पृहा होती है। यहाँ यह देखनेमें आता है कि शब्द कानोंमें प्रवेश कर Ocular vision (चाक्षुष दर्शन) को regulate (नियमित) करता है। वर्त्तमान युगमें शिशु बालक-बालिकाओंके Psychology (मनोविज्ञान) का study (अध्ययन) जो व्यक्ति जितना ही कर सकता है, उसका शिक्षा-प्रदान उतना ही अच्छा होता है।

'नाम' या संज्ञा वाच्यवस्तु का वाचक है। "नामश्रेष्ठं" अर्थात् सर्वापेक्षा श्रेष्ठ object (विषय) हरिनामकी बात जानना चाहिए। सभी प्रकारके नामोंकी अपेक्षा कृष्णनाम ही श्रेष्ठ है।

Our sight must be erroneous if we do not first hear from spiritual Master. Aural reception must be offered at first. अर्थात् हमारा दृष्टिकोण भ्रमात्मक सिद्ध होगा यदि पहले हम अपने सद्गुरु या परमार्थदाता गुरुदेवके मुखसे नहीं सुनें। सर्वप्रथम कानों द्वारा अप्राकृत शब्दको ग्रहण करना होगा। वक्तव्य वस्तुका impression (प्रभाव) अधिक रूपसे प्रदान करनेके लिए श्रवणकारीको कर्णवेध-संस्कार प्रदान करना होता है। साधारण रूपसे शिशुओं का कान कोई शब्द या इङ्गित की ओर पहले ही धावित होता है। उनकी आँखोंकी दृष्टि Vacant (शून्य) होती है। शब्दके साथ empirical knowledge (प्रयोग का प्राकृत ज्ञान) का निकट सम्बन्ध होता है। Transcendental knowledge (दिव्य ज्ञान) के सम्बन्ध में भी यही बात है। Absolute atmosphere (पूर्णमुक्त वातावरण) में यदि रहने की इच्छा हो, तो Absolute (पूर्ण वस्तु) की बात सुनना आवश्यक है। सभी प्रकारके मंगल-लाभमें विष्णु का नाम-श्रवण primary thing (प्रथम या मूल-कार्य) है। सर्वक्षण पूर्णवस्तुकी कथा सुननी होगी। Infinitesimal whole (अति सूक्ष्म पूर्ण वस्तु) का survey (पर्यवेक्षण) होने पर पूर्णवस्तु का सुनना होता है। 'मैं देखता हूँ', 'मैं आस्वादन कर रहा हूँ' —ये सभी प्राकृत दर्शनके अन्तर्गत है। मायिक दृष्टि द्वारा जो दर्शन होता है, वह eclipsed (प्रच्छन्न) विष्णु-दर्शन है। माया विष्णु की eclipsing agent (प्रच्छन्नकारिणी शक्ति) है। जहाँ अपनी चेष्टा स्तब्ध होकर भगवानकी चेष्टा का उदय हो, वहीं पर जीव को सुविधा प्राप्त होती है। असुरराज हिरण्यकशिपुने प्रह्लादकी बातको अपनी बुद्धि से समझने का प्रयास किया था। इसलिए प्रणिपात-परिप्रश्न-सेवावृत्ति रहित होनेके कारण उसका यथार्थ श्रवण नहीं हुआ। हिरण्यकशिपु के अनुगत नास्तिक लोग विष्णु को प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। वे लोग विष्णुको अपनी तरह प्राकृत एवं अन्य देवताओंके साथ

समझा किया करते हैं। किन्तु शास्त्रोंका कहना है—

प्राकृत करिया माने विष्णुकलेवर।
विष्णुनिन्दा नाहि इहार उपर॥
(चै० च० आ० ७।११५)

अर्थात् विष्णुकलेवरको प्राकृत मानना—इससे बढ़कर और कोई विष्णुनिन्दा नहीं हो सकती।

'विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितर-
समधीर्यस्य वा नारकी सः।'

अर्थात् जो व्यक्ति सर्वेश्वरेश्वर विष्णुको अन्यान्य देवताओंके समान समझे, वह निश्चय ही नारकी है।

ब्रह्म शब्दकी परिभाषा–'ब्रहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म'। ब्रह्मकी धारणा प्राकृत वस्तुके अनुपात में magnitudinal difference (परिमाण एवं आकारगत पार्थक्य) में अवस्थित है। ब्रह्मानुसन्धान कार्य—from finite towards infinite (सीमित वस्तुसे अपरिसीम वस्तु) की ओर proceed (अग्रसर) होने का काय है। जीवका ब्रह्म हो जाना या 'सभी ही ब्रह्म है' ऐसा विचार Pantheistic (मायावादी या निर्वाणवादी) ओर Panantheistic idea (नास्तिक्यपूर्ण विचार) है। नाम-रूप-गुण-लीला-परिकर सभी का नाम है। Vishnu is All-Pervading अर्थात् विष्णु अपरिसीम या सर्वव्यापी हैं। उन्हें अधोक्षज वासुदेवके रूपमें दर्शन नहीं करनेसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन त्रिविध रूपसे प्रतीति होती है। श्रीविष्णु सभी देवताओंके वन्दनीय हैं। विष्णुतत्त्वके परिपूर्ण तत्त्व श्रीमन्महाप्रभुकी वन्दना भागवतमें दो श्लोकोंमें विशेषरूपसे वर्णित है—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

अर्थात् मैं उन महापुरुष या श्रीमन्महाप्रभुके चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ जो नित्यकाल ध्यान करने योग्य हैं, समस्त प्रकारके सन्तापके नाशकारी हैं, अभीष्ट वस्तुके आलयस्वरूप हैं, तीर्थोंके एकमात्र आधार या आश्रयरूप हैं, शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा प्रणम्य हैं, सभीको शरण देनेवाले हैं, अपने भक्तोंकी सभी आर्त्तियों-का (दुःखोंका) अपहरण करनेवाले हैं, प्रणतजनोंके पालन करनेवाले हैं एवं भव-समुद्रसे पार जानेके लिए जहाजस्वरूप हैं।

साधन प्रणालीमें ध्यान, धारणा प्राणायामकी बात सुनी जाती है। ध्यान-कार्य विचारपुष्ट अवस्था है। चिज्जगतके विषयमें धारणा विशुद्ध होना आवश्यक है। श्रौतवाणी-ग्रहणकी योग्यता आवश्यक है, यही धारणा कही जा सकती है। प्राणायाम अर्थात् प्राणवायुका संयमन और प्रसारण करना। प्राणवायु योगमार्गमें संयत और प्रसारित होती है। हमारी नासिक्य वायु पञ्च महाभूतके अन्तर्गत है। वह वायुकी all-pervasive (सर्वव्यापक) अवस्था प्राप्त नहीं करती। विष्णु ही जीवकी मुख्य प्राणवायुके अधिदेवता हैं। केवल मनुष्यको ही प्राणवायुकी आवश्यकता है, ऐसी बात नहीं; बल्कि जलचर, स्थलचर सभी प्राणियोंको

प्राणवायुकी आवश्यकता है। प्राणको पाश्चात्य भाषामें Pneuma कहते है। प्राण-धारणके लिए केवल नासिका द्वारा वायु-ग्रहण ही पर्याप्त नहीं है। हमारे जीवन-धारण-के लिए वायुको छोड़कर अन्यान्य gross materials (स्थूल पदार्थों) की आवश्यकता होती है। इसलिए विष्णुकी इच्छा और कृपाद्वारा ही हम जीवन-धारण करते हैं, इस में कोई दूसरी बात नहीं हो सकती।

'नामश्रेष्ठं'—विष्णु-नामके साथ प्राकृत या इतर देवताओंके नामोंकी तुलना करना नामापराध है। 'माप लेने' के धर्ममें आबद्ध रहनेसे कदापि सुविधा न होगी। चिज्जगत के लीला-वैचित्र्यमें जड़ जगतकी मूर्खताका आवाहन नहीं करना चाहिए। 'जितना मत उतना पथ' या सभी प्रकारकी यात्राओंका ही समान फल नहीं हो सकता। हाउड़ा स्टेशनसे हरिद्वारको जाते समय रास्तेमें लक्सार और सहारनपुर आदि स्टेशन आते हैं। भूलवशतः हरिद्वारका टिकट न लेकर उसके पहलेके किसी भी स्टेशनका टिकट खरीद बैठूँ, तो मन ही मन हरिद्वारकी बात चिन्ता करनेपर भी फलकालमें आखिरी गन्तव्य स्थान हरिद्वार पहुंचा नहीं जा सकता।

वैकुण्ठ-शब्दसे वैकुण्ठ-शब्द भगवानका भेद नहीं है। वेदशास्त्रमें अद्वयज्ञान की बात कहनेके लिए ही 'एकमेवाद्वितीयम्' शब्दद्वारा तत्त्ववस्तुको लक्ष्य किया है। Synthetic System (संयोजन-पद्धति) से analytic (विभाजन-पद्धति) की ओर एवं diversity (विषमता) से unity (समानता) की ओर जाना होगा। यही एकाय विचार है।

आचार्य ही वैकुण्ठनाम प्रदान करते हैं और कर सकते हैं। वे भगवानके ही अभिन्न-सेवक-विग्रह हैं। उन्हें मनुष्य ज्ञानसे अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। अवज्ञा करनेपर महा-पराध होता है। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥
(भा० ११।१७।२७)

वैकुण्ठनाम दृश्यजगतकी क्षुद्रतामें आबद्ध नहीं हैं। मायिक या जागतिक गुरुब्रुव दलके व्यक्ति नामको all pervading (सर्वव्यापी) रूपसे प्रकाश होनेमें बाधा प्रदान कर रहे हैं। कृष्णप्रेष्ठ सद्गुरु ही कृष्णको दे सकते हैं। 'शरणागति' पाठ कर हम यह जान सकते हैं कि वैष्णव गुरु ही कृष्ण को देने में समर्थ हैं।

कर्मी, ज्ञानी, योगी या जागतिक अध्या-पकके निकट जानेपर मायाकी बात सुननी ही होगी। ये लोग विष्णुके नित्यास्तित्व या सच्चिदानन्द विग्रहत्व स्वीकार नहीं करते। ये लोग भगवदवतार और आचार्यदेवमें मर्त्यबुद्धि किया करते हैं।

दीक्षाप्राप्त वैष्णव-ब्राह्मणका ही विष्णुसेवा-में अधिकार है। अदीक्षित स्त्री और शूद्रोंका विष्णुपूजामें अधिकार नहीं है। मनुष्य रज-स्तमोगुणताड़ित होनेपर 'विष्णुभक्ति को छोड़कर दूसरी बात या दूसरा उपाय है एवं विष्णुभक्तको छोड़कर अच्छे व्यक्ति हैं'—ऐसा विचार करते हैं। वे लोग क्रमशः नास्तिक हो जाते हैं। वे लोग नामकी श्रेष्ठता उपलब्धि नहीं कर सकते। शब्द यदि प्राकृत या क्षुद्र हों, तो

वह मायाशक्ति के अन्तर्गत हो पड़ा। इसलिए नामको शब्द-ब्रह्म कहा गया है।

'अनया राधितः' विचार ग्रहणीय है, किन्तु 'अनया मीयते' विचार ग्रहणीय नहीं है। वस्तुको measure (माप) कर लेना मायाका कार्य है। चिच्छक्ति ह्लादिनी या आनन्ददायिनी शक्ति है।

"The word God or Theos has got a very limited idea. We find the perfect and highest conception of Theism in Krishna only. The word 'Allah' means the greatest i.e. possessor of a partial quality. It is an Adjective. But Krishna is the source of all powers. He is the Proper Noun. The inculcators of Vishnu the Absolute Truth, are perfectly sanguine of their full conception. Baikuntha must not be measured.

अर्थात् God या Theos शब्द का विचार बहुत ही सीमित है। हम लोग भगवद्-विश्वास या आस्तिकताका पूर्णतम और उच्चतम सिद्धान्त कृष्णमें ही प्राप्त कर सकते हैं। 'अल्लाह' शब्दका अर्थ 'महानतम' या एक आंशिक गुणका अधिकारी मात्र है। यह शब्द एक विशेषण है। परन्तु कृष्ण सभी प्रकारकी शक्तियोंके मूल-स्रोत हैं। वे नामवाचक संज्ञा स्वरूप हैं। पूर्ण सत्य वस्तु विष्णुके उपदेशक व्यक्ति अपने पूर्ण सिद्धान्तके ऊपर सम्पूर्ण रूपसे विश्वासयुक्त हैं। वैकुण्ठ वस्तुको मापनेका प्रयास नहीं करना चाहिए।

'नामश्रेष्ठं मनुमपि'—कृष्णनाम और कृष्णमंत्र जो श्रीगुरुदेव अपने अनुगत शिष्यको प्रदान करते हैं, उसकी आलोचना करने पर श्रीगुरुपादपद्मकी महिमा का दर्शन होता है। जब तक गुरुदेवमें मर्त्यबुद्धि रहेगी, तब तक हरिनामकी बात और महिमा समझी नहीं जा सकती। 'एकमात्र कृष्णनाम ही श्रेष्ठ है'—यही श्रीगौरसुन्दरका श्रेष्ठ दान है। श्रीचैतन्य महाप्रभुको साधारण मनुष्य माननेसे अनन्तकाल तक भी मंगल न होगा। "शचीपुत्रमत्र स्वरूपं रूप तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्"—ये सभी श्रीगुरुकृपाद्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। मथुरा शुद्ध कृष्ण-ज्ञानकी भूमिका है, जागतिक भाववाचक और साकार विचार वहाँ तक पहुंच नहीं सकते।

कृष्ण-मन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। जगतमें साँपका मंत्र, बाघका मंत्र आदि अनेक प्रकारके प्राकृत-मंत्रकी क्रियाशीलता है। किन्तु अप्राकृत कृष्ण-मंत्रमें सिद्धि होने पर सभी प्रकार के मनोधर्म स्तब्ध हो जाते हैं। उस समय ही श्रील रूप गोस्वामीकी बात या श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु समझा जा सकता है। उस समय ही श्रील सनातन गोस्वामीके Theology (भगवत्ता-ज्ञान) की मधुरता भी उपलब्धि होती है। गोष्ठवाटी और मथुराके आसपासके सभी स्थान ही कृष्णके विहार-क्षेत्र हैं। श्रीराधाकुण्ड-तीरमें श्रीगुरुपादपद्मका नित्यकुञ्ज है। वहाँ उन्होंने सेवा-प्रभावसे कृष्णको आबद्ध कर रखा है। वहाँसे कृष्ण एक मुहूर्त्तके लिये भी अन्यत्र नहीं जा सकते। गुरुपादपद्मको छोड़कर अन्य किसी स्थानमें गोष्ठ नहीं है। गो+स्थ=गोष्ठ, अर्थात् जहाँ

कृष्णकी सभी गौएँ विचरण एवं अवस्थान करती हैं। कृष्णकी सभी गौएँ कैसी हैं, वहाँ जानेपर जाना जा सकता है। शान्तरस-रसिक शुद्ध कृष्णज्ञान-निष्ठ ज्ञानी भक्त लोग वहाँ कृष्णकी गौ-स्वरूप हुए हैं। "राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिका-माधवाशां"—श्रीगुरुदेवकी कृपाद्वारा ही गिरिवर गोवर्द्धनको पाया जा सकता है। व्रजवासी भक्तोंके आनन्द-विधानके लिये ही कृष्णकी श्रीगोवर्द्धन-धारण-लीला है। कृष्ण दूसरे मूर्त्तिमें गोवर्द्धन हैं। मनोधर्मयुक्त होनेपर गोवर्द्धनको प्रस्तर-राशि रूपसे दर्शन होता है।

श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका जहाँ क्रीड़ा करती हैं, वह जड़जगतकी कीचड़-मिट्टी निर्मित वस्तु नहीं है। वह दिव्य चिन्तामणिमय भूमि है। "राधिका माधवाशां" अर्थात् श्रीश्रीराधामाधवकी अन्तरंग-सेवा-प्राप्तिकी आशा जिनकी कृपासे प्राप्त हो, वे ही श्रीश्रीगुरुपादपद्म हैं।

श्रीकृष्णने अरिष्टासुरका वध कर राधाकुण्डमें स्नान किया था। अरिष्टासुर अर्थात् जिसे धर्मका साँड या Ethical Principle या मायाधर्मके प्रतीक कहते हैं, उसीका कृष्णने वध किया था। यह असुर श्रीराधारानीको साधारण गोपी समझकर उनपर आक्रमण कर कृष्णसेवामें बाधा उत्पन्न कर रहा था। श्रीगुरुपादपद्मकी कृपासे हमारे सर्व प्रकारके अमंगल नष्ट होकर समस्त प्रकारके मंगलोंका उदय होता है। मापनेका धर्म या जड़ नीति द्वारा कृष्णको कदापि जाना नहीं जा सकता। उन्हें एकमात्र शुद्धा केवला भक्ति द्वारा जाना जा सकता है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
(गीता १८।५५)

एकमात्र कृष्णकथा ही मूल्यवान है। गोलोकका पाथेय संग्रह करनेके लिये कृष्णकथा ही एकमात्र सहारा है। कृष्णकथा छोड़कर दूसरी बातोंका मूल्य फूटी कौड़ीके बराबर भी नहीं है। जगतमें कृष्णकथाका ही प्रचुर प्रचार होनेकी आवश्यकता है। कृष्णके अवतार-समूहकी कथाकी आलोचना-फलसे जीवोंकी सर्वप्रकारकी मूर्खता दूर होकर जीव विरजा-ब्रह्मलोकके केवल-निर्विशेषत्वका अतिक्रमण कर क्षीर-सागरके तीरमें व्यष्टि-अन्तर्यामी परमात्मा तृतीय पुरुषावतार अनिरुद्ध-विष्णुका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। हम लोग वर्त्तमान समयमें कृष्णकी कथा और कृष्णधामकी कथा परित्याग कर हड्डी-माँसके पिण्ड स्वरूप इस देहकी चिन्तामें दिनरात अतिवाहित कर रहे हैं। हम लोग जड़वस्तुके साथ परिचय प्राप्त करनेमें ही समय बिता रहे हैं। आत्मा या Soul के साथ साक्षात्कार नहीं हो रहा है। वैकुण्ठ-अनुभूति न होनेके कारण जगद्वासी हम लोग परस्पर परस्पर आक्रमण कर रहे हैं। परम सत्यवस्तु की प्रतिद्वन्द्विता नहीं हो सकती। वह किसीके द्वारा आक्रमण-योग्य नहीं है। हम यदि अपनेको जागतिक बहुतसे धर्म-सम्प्रदायके अन्तर्गत एक व्यक्तिविशेष समझें, तो जागतिक बातोंके लेकर परस्पर विद्वेष और प्रतियोगिता मूलमें हमारा जीवन वृथा ही बीत जायगा।

कृष्णकी सभी लीलाएँ योगमाया या चिच्छक्ति द्वारा ही संघटित होती हैं। जागतिक

अभ्युदय और जड़विलास भोगमाया या महामाया द्वारा परिचालित होते हैं। यही स्थान श्रीवृन्दावन श्रीयोगपीठसे अभिन्न है। श्रीवृन्दावन योगपीठमें रत्नमन्दिरमें रत्नसिंहासनमें श्रीगोविन्ददेव प्रियसखी द्वारा सेवित होते हैं।

श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके अमल दास्यमें हम यदि नियुक्त हो सके, तब ही जड़जगतका चिन्तास्रोत चिरकालके लिये समूल विनष्ट हो जाता है। अरिष्टासुरका विनाश न होनेपर श्रीराधागोविन्दकी सेवाके असीम सुखको प्राप्त नहीं कर सकते। हरि-गुरु-वैष्णवके विद्वेषीके प्रति क्रोधका व्यवहार न करनेसे हरिभजन नहीं होता—

'काम' कृष्ण-कर्मार्पणे, 'क्रोध' भक्तद्वेषी जने,
'लोभ' साधु-संगे हरिकथा।
'मोह' इष्टलाभ विने, 'मद' कृष्णगुणगाने,
नियुक्त करिब यथा-तथा॥

अर्थात् काम' कृष्ण-सेवाकी तीव्र लालसा में, 'क्रोध' भक्त द्वेषीके प्रति, 'लोभ' साधु-संगमें हरिकथा सुननेमें 'मोह' इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिमें, 'मद' कृष्णके, गुणगानमें यथा तथा नियुक्त करना चाहिये।

-जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

मुरलीकी अलौकिक तान

सुनिये, सुनिये हो धरि ध्यान, सुधा रस मुरली बाजै।
स्याम अधर पै बैठि बिराजति, सप्त सुरन मिलि साजै॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि सुनि बेनु मधुर कल गान।
मन गति पंगु भई ब्रज जुवती, गंधब मोहे तान॥
खग मृग थके फलनि तृन तजि कैं, बछरा पियत न छीर।
सिद्ध समाधि थके चतुरानन लोचन मोचत नीर॥
महादेव की नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत।
ध्यान टरयौ, धुनि सौं मन लाग्यौ, सुर मुनि भए सचेत॥
जमुना उलटि बही अति ब्याकुल, मीन भए बलहीन।
पसु पच्छी सब थकित भए हैं, रहे इकटक लौलीन॥
इन्द्रादिक, सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आवेस।
घोष तरुनि आतुर उठि धाईं, तजि पति पुत्र अदेस॥
श्री वृन्दाबन कुञ्ज कुञ्ज प्रति अति बिलास आनन्द।
अनुरागी पिय प्यारी कैं, सँग रस रचैं सानन्द॥
तिहुँ भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल।
थकित भए तारागन सुनि कैं, चन्द भयौ बेहाल॥
नटवर भेष धरें नँद नन्दन निरखि बिबस भयौ काम।
उर बनमाल, चरन पंकज लौं, नील जलद तन स्याम॥
जटित जराव मकर कुण्डल छबि, पीत बसन सोभाइ।
बृन्दाबन रस रास माधुरी निरखि सूर बलि जाइ॥

(सूरदास जी)

प्रश्नोत्तर

(भक्ति–प्रातिकूल्य)

१- भक्तिके अनुकूल विषय स्वीकार और प्रतिकूल विषयके वर्जनमें दृढ़ताकी आवश्यकता क्यों है ?

"भक्तिको अनुकूल-स्वीकार एवं प्रतिकूल-परिहार विषयमें साधकोंके लिए दृढ़ता एवं यत्न आवश्यक है। संसारी जीवों द्वारा कई समय बहुत से भजन-प्रतिकूल कार्य हो पड़ते हैं। विशेष यत्न और दृढ़तापूर्वक उनका परित्याग न करनेसे साधनमें विघ्न उपस्थित होकर अभीष्ट-प्राप्तिमें विलम्ब होता है।"

—'साधन', स० तो ११।५

२- प्रातिकूल्य-वर्जन किसे कहते हैं ?

"भगवद्-भागवत-प्रसाद छोड़कर और कुछ भी भोजन न करूँगा, भगवद्-भागवत-रूप मन्दिर और स्थानादि छोड़कर और कुछ भी न देखूँगा, प्रसाद-गंध को छोड़कर और किसी वस्तुका घ्राण नहीं लूँगा, भगवद्-भागवत-कथाको छोड़कर और दूसरी बात नहीं सुनूँगा, हस्त-पदादिविशिष्ट शरीरको भगवद्-भागवत-सम्बन्धशून्य कार्यमें नियुक्त नहीं करूँगा, भगवद्-भागवत वस्तुको छोड़कर और कुछ भी ध्यान, विचार और आस्वादन न करूँगा, भगवद्-विषय को छोड़कर अन्य काव्य-गीतादि गान न करूँगा—ऐसा दृढ़ संकल्प ही प्रातिकूल्य-वर्जन कहलाता है।"

—'श्रद्धा ओ शरणागति' स० तो ४।६

३- किस प्रकारके व्यक्तियोंका संग-त्याग कर्त्तव्य है ?

"जहाँ भक्तिविरुद्ध आचार हो, वहाँ भक्ति नहीं है। इस प्रकारके व्यक्तियों का संग परित्याग करना ही कर्त्तव्य है।"

—'कुटीनाटी', स० तो ६।७

४- दुःसंग और सुसंग निर्द्धारण का क्या विचार है ?

"भगवद्विमुख पुण्यवान् और पापी—दोनों ही 'दुःसंग' हैं। भगवत्सान्मुख्य-प्राप्त पापी व्यक्तिको भी 'सुसंग' के रूपमें जानना होगा।"

—'जनसंग' स० तो १०।११

५- कैसे व्यक्तियोंके संगको 'सत्संग' कहा जा सकता है ?

"धन, पाण्डित्य, जाति या वर्ग इत्यादि जितना भी रहे, ऐसे सम्पन्न बहिर्मुख व्यक्तियों का संग सर्वदा यत्नपूर्वक परित्याग कर कृष्णोन्मुख व्यक्तियों का संग करना चाहिए। चार प्रकार से परिदृश्य होकर कई व्यक्ति कृष्णोन्मुखके रूपमें परिचय देते हैं। उनमें से जो व्यक्ति सरल एवं निष्कपट हैं, वे ही सत्संग हैं। चार प्रकार के व्यक्ति इस प्रकार हैं—(१) कर्म-धर्म सापेक्ष भक्त, (२) कर्म-धर्म निरपेक्ष पक्व योगी, (३) अपक्व-योगी, एवं (४) तत्तत्-वेशधारी।"

—आ० वि० भा० टी०

६- असत्संग और साधुसंग का क्या फल है ?

"असत्व्यक्तियों का संग करनेसे घोर संसाररूप फल प्राप्त होता है। कौन असत् है, कौन सत् है—यह विषय विचार न करने पर भी संग-फल अवश्य प्राप्त होता है। साधु व्यक्ति का संग करने से निःसंगत्वरूप फलोदय होता है।"

—'साधुसंगका प्रणाली-विचार', ससंगिनी (क्षेत्रवासिनी), स० तो० १५।२

७- व्यवहारिक कार्यमें बहिर्मुख व्यक्तियों का संग कहाँ तक किया जा सकता है ?

"भगवद्बहिर्मुख व्यक्तियों का संग नहीं करना चाहिए। व्यवहारिक कार्यमें उनके साथ सम्मिलन अवश्य होगा। उस कार्य तक ही उनके साथ सम्बन्ध रखेंगे। कार्य समाप्त होने पर उनके साथ व्यवहार न रखेंगे।"

—'तत्तत् कर्मप्रवर्त्तन,' स० तो ११।६

८- कैसी चित्तवृत्ति द्वारा संग होता है ?

"असत् व्यक्तिके प्रति दान और असत् व्यक्तिके निकटसे ग्रहण यदि प्रीतिपूर्वक हो, तब ही 'असत्संग' हो पड़ता है। असत् व्यक्ति के निकट आने पर उसके साथ जो कर्त्तव्य-कर्म आवश्यक हो, उसे ही केवल कर्त्तव्य-ज्ञानसे करना चाहिए। परस्परकी गूढ़ बातकी जल्पना नहीं करनी चाहिए। गूढ़ जल्पनामें प्रायः ही प्रीति रहती है, जिससे संग होता है। नितान्त संसारी बान्धवादिके मिलनमें आवश्यक-वार्त्ता मात्र करना चाहिए। हृदयके साथ प्रीति उस समय न करना ही अच्छा है।"

—'संगत्याग' स० तो ११।१२

९- बहिर्मुख लोगोंके साथ आन्तरिक भ्रातृ-भाव क्या निन्दनीय नहीं है ?

"किसी सभामें एकत्र उपविष्ट होना या नौकारोहणमें एकत्र नदी पार होना, एक घाट में स्नान करना या एक बाजारमें द्रव्यादि क्रय-विक्रय करना—ये 'संग' नहीं हैं। किसी व्यक्तिके साथ आन्तरिक भ्रातृ-भावके साथ व्यवहार करना ही संग है।"

—चै० शि० ३।३

१०- भक्ति-प्रतिकूल षड्वेग साधकोंका क्या अनिष्ट करते हैं ?

"काम, क्रोध, लोभ,मोह मद,मत्सरता—ये सभी उत्पात सर्वदा मानवोंके मनमें उदित होकर वाक्यके वेग अर्थात् भूतोद्वेगकर वचनके प्रयोगके द्वारा, मानस वेग अर्थात् नानाविध मनोरथके द्वारा, क्रोधके वेग अर्थात् रूढ़-वाक्यादिके प्रयोगद्वारा, जिह्वाके वेग अर्थात् मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त (कड़वा) के भेदसे षड्विध रस-लालसाके द्वारा, उदरके वेग अर्थात् अत्यन्त भोजन-प्रयासके द्वारा, उपस्थके वेग अर्थात् स्त्री-पुरुष संयोगकी लालसाके द्वारा मनको असद्विषयमें आविष्ट करते हैं। इसलिए चित्तमें भक्तिका शुद्ध अनुशीलन नहीं होता।"

—पा० प० वृ० १

११- स्रक्-चन्दन-वनिता-भोगादि का सुख नित्य है या अनित्य है ?

"स्त्री-संभोग, आहार, गात्र-मार्जन, अनुलेपन, सुगन्धि-सेवन, आदि जितने भी प्रकारके इन्द्रिय-सुख हैं, वे अत्यन्त अनित्य हैं, भोग होनेके मात्रसे ही दुःखका उदय होता है। मद्यपायी और वेश्यागामी पुरुषोंके चरित्रमें इसका उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। स्वर्गका नन्दन-कानन, उर्वशी-मेनका आदि अप्सराओं का नृत्य और भोग तथा अमृत-पानमें ही नित्य सुख कहाँ है ? वे सभी ही इन्द्रिय-सुखकी

काल्पनिक उत्कृष्टता मात्र हैं।"

—त० सू० २७ वाँ सूत्र

१२- द्रव्यासक्ति भक्तिमें विघ्नकारी क्यों है ? वह कैसे दूर होती है ?

"द्रव्यासक्ति परित्याग करनेके लिए विशेष यत्न करना उचित है। गृह-द्वारमें, व्यवहार्य-द्रव्यमें, अलंकार-वस्त्रमें, अर्थमें, स्त्री-पुत्रादिके शरीरमें, अपने शरीरमें, भोज्य-वस्तुओंमें, वृक्ष-पशु आदिमें गृही व्यक्तियोंका निसर्गसिद्ध या स्वाभाविक आसक्ति होती है। किसी-व्यक्तिका धूम्र-पानमें, ताम्बूल-भक्षणमें, मत्स्य-मांस आदिमें एवं मादक वस्तुमें इतनी आसक्ति होती है कि वह पार-मार्थिक साधनामें बाधा एवं प्रतिबन्धकता सृष्टि करती है। कई व्यक्ति मत्स्यादिके लोभ से भगवत्-प्रसादादिका आदर नहीं करते। धूम्रपानके बारम्बार करनेकी स्पृहा द्वारा बहुतसे व्यक्ति भक्तिग्रन्थ-पाठ, श्रवण, कीर्त्ता-नादि आस्वादन एवं देवमन्दिरमें बहुत देर तक अवस्थिति नहीं कर पाते। निरन्तर कृष्णानुशीलनके लिये ये सभी द्रव्यासक्ति बहुत ही विरोधी हैं। बहुत यत्नपूर्वक उन सभी आसक्तियोंका परित्याग न करनेसे भजन सुख पाया नहीं जाता। साधुसंगमें इन सभी क्षुद्रासक्तियों को दूर करना चाहिये। भगवद्भक्ति-सम्मत व्रताचरणके द्वारा ये सभी दूर हो जाती हैं।"

—'संगत्याग', स० तो० ११।११

१ —भोग्यद्रव्य-संग क्या-क्या है ? अनुकल्प विधानमें किस-किस द्रव्यका संगत्याग और संकोच करनेकी विधि है ? किस प्रकार द्रव्य-संग-त्याग हो सकता है ?

"भोग्यद्रव्य दो प्रकारके हैं—प्राणरक्षक एवं इन्द्रिय-तोषक। अन्न-पान आदि द्रव्य ही प्राणरक्षक हैं। मत्स्य, मांस, ताम्बूल, मादक-द्रव्य, ताम्रकूटादि धूम्रपान—ये सभी ही इन्द्रिय-तोषक हैं। व्रत-दिनमें इन्द्रिय-तोषक द्रव्य पूरी तरह परित्याग न करनेसे व्रत नहीं होता। व्रतदिनमें जहाँ तक हो, प्राणरक्षक द्रव्य भी परित्याग करना उचित है। शरीरके अवस्थानुसार जो अनुकल्पका विधान है, उसके द्वारा प्राणरक्षक सभी द्रव्योंका जहाँ तक हो सके,वहाँ तक संकोच करना चाहिये। इन्द्रिय-तोषक द्रव्योंका अनुकल्पादि नहीं है, परित्याग ही विधि है। भक्त-जीवकी भोग-प्रवृत्तिको सकोच करनेका अभ्यास ही व्रतका एक अंग है। यदि ऐसा सोचे कि किसी प्रकार जैसे-तैसे आज त्याग कर कल वे द्रव्य यथेष्ट भोग करूँगा, तब व्रतका तात्पर्य सिद्ध न होगा। क्योंकि क्रमशः अभ्यासके द्वारा ये सभी द्रव्यसंग परित्याग करानेके लिये सभी व्रत निर्णीत हुए हैं।"

—'संगत्याग', स० तो० ११।११

१४—कौनसा व्यक्ति अदर्शनीय है ? किसका संग करना चाहिये ?

"गुरुके प्रति अपराधी क्रूर व्यक्तियोंको कदापि नहीं देखना चाहिये। गुरु और वैष्णव के प्रति जो लोग एकनिष्ठ हैं, ऐसे व्यक्तियोंका सर्वदा संग करना चाहिये।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश'-४६,स०तो०७।४

१५—लोकापेक्षासे सत्यकी ऐकान्तिकता परित्याग करना क्या उचित है ?

"वैष्णवतामें एकमत होकर रहना उचित है, लोकापेक्षा कर नाना स्थानोंमें जाकर नाना-मतोंका समर्थन उचित नहीं है।"

- 'साधुवृत्ति', स० तो० ११।१२

१६—किन लोगोंके साथ सहवास उचित नहीं है ? विषयातुर व्यक्ति यदि वैष्णव चिह्नधारी हो, तो क्या उनका संग करना चाहिये ?

"देहाभिमानी व्यक्तिके साथ सहवास नहीं करना चाहिये। विषयातुर वंचक व्यक्ति यदि वैष्णव चिह्न सभी धारण करें,तो भी उनके साथ सहवास न करना चाहिये।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश', ४६, स० तो० ७।४

१७—भक्त जीवनकी जीवन-यात्रा की क्या विधि है ? आधिक्य या न्यूनतासे क्या असुविधा होती है ?

"अच्छे-अच्छे द्रव्य (भोग्य या इन्द्रिय प्रीतिदायक) और आच्छादनादिके लिये यत्न नहीं करना चाहिये। अत्यन्त अल्प परिश्रमसे लब्ध पवित्र महाप्रसाद या भगवद् प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। यही भक्तोंकी जीवन-यात्रा की विधि है। जो प्रयोजन हो, वही संग्रह किया जाय। अधिक या स्वल्प आहरण से शुभ फल न होगा। अधिक आहरण या संग्रह होने पर साधक रसके वशीभूत होकर परमार्थ खो देंगे। उपयुक्त रूपसे संग्रह न करनेसे भजनोपाय स्वरूप शरीरकी रक्षा न होगी।"

—'अत्याहार', स० तो० १०।९

१८—देवतान्तर की निन्दा भक्ति-प्रतिकूल क्यों है ?

"अन्यान्य देवताओंकी निन्दा करना या अवज्ञा करना सर्वथा निषिद्ध है। × × × उनकी यथायोग्य पूजा कर कृष्ण भक्तिका वर प्रार्थना करनी चाहिये। किसी भी जीवकी ही अवज्ञा न करेंगे। भिन्न-भिन्न देशोंमें जो सभी देवोपासनाके चिह्न पूजित हो, उन सभीका सम्मान करेंगे। क्योंकि तत्तत् चिह्न द्वारा निम्नाधिकार स्थित सभी जीव भक्ति का प्राग्भाव (प्रथम या पूर्व भाव) शिक्षा कर रहे हैं। अवज्ञा करनेसे अपने अहंकारकी वृद्धि होती है, अकिञ्चन-बुद्धि नष्ट हो जाती है—चित्त में भक्ति-वासके योग्य स्थान नहीं रह जाता।"

—चै० शि० ३।३

१९—वैष्णव चिह्नधारी और वैष्णवाभिमानी कौन-कौनसे व्यक्तिका संग परित्याग करना चाहिये ?

"वैष्णव चिह्नधारी और वैष्णवाभिमानी व्यक्तियोंमें निम्नलिखित व्यक्तियों का संग अवश्य परित्याग करना होगा—(१) जो लोग केवल धूर्त्ततापूर्वक वैष्णवचिह्न धारण करते हैं, (२) केवल-अभेदवादका वैष्णवोंमें प्रचलन करनेके लिये जो लोग अपनेको वैष्णव आचार्योंके अनुगत जन कहकर परिचय प्रदान करते हैं, (३) अर्थ लोभसे या प्रतिष्ठा-लोभसे या किसी प्रकारके भोग-लोभसे जो लोग वैष्णवपक्षीय कहकर अपना परिचय देते हैं।"

—चै० शि० ३।२

२०—मायावादी का संग क्या करना चाहिये?

"मुक्ताभिमानी मायावादीका संग नहीं करना चाहिये।"

—'भक्तिप्रातिकूल्य विचार',श्रीभा०म०मा०१४।४७

२१—मायावादीमें भाव-विकार देखनेपर क्या उस वैष्णव न समझना होगा ?

"मायावादी व्यक्तिके अष्टसात्त्विक विकारादि वृथा हैं।"

–'मायावादी किसे कहते हैं ?, स० तो० ५।१२

२२–बहुजनसाध्य धर्म-कार्यमें भक्ति-प्रातिकूल्य होने पर क्या करना चाहिये ?

"बहुतसे व्यक्तियोंकी सहायताके बिना जो कार्य नहीं होता, तथा ऐसे कार्यमें सहायता-प्राप्तिका सहज उपाय नहीं है, उस कार्यमें प्रयास करना श्रेयस्कर नहीं है; बल्कि केवल भजनमें व्याघात करेगा। मठ, अखाड़ा, मन्दिर सभा इत्यादि बड़े-बड़े कार्य उक्त विधि द्वारा कठिन हो, तो उसमें यत्न न करना चाहिये।"

– चै० शि० ३।३

२३—साधक क्या मादक द्रव्य सेवन कर सकते हैं ?

"मद्य, गाँजा, अफीम, चरस, सिद्धिकी बात दूर रहे, तम्बाकू तक वैष्णवोंका सेवनीय नहीं है। इन सभी वस्तुओंका सेवन वैष्णव-शास्त्रके विरुद्ध है। तम्बाकूके धूम्रपान द्वारा जीव उसका अत्यन्त वशीभूत होता है। बल्कि इसके लिये असत्संग करनेके लिये भी बाध्य होता है।"

—चै० शि० ३।३

२४—उत्तम भोजनादि और आसव-पानादिमें लोभ या पापजनक एवं पुण्यमय वस्तुमें आसक्ति भक्ति-प्रतिकूल क्यों है ?

"अच्छे प्रकारसे भोजन, पान, शयन एवं धूम्र-आसवादिकी सेवामें जो लोभ होता है, वह लोभ भक्ति-वृत्तिका संकोच कर देता है। आसव एवं कनक-कामिनीका लोभ भक्तिका नितान्त विरोधी है। जो लोग शुद्धभक्ति-लाभ की आशा करते हैं, उन्हें अत्यन्त यत्नसे इन सभी लोभों का परित्याग करना होगा। पापवस्तु ही हो, या पुण्यमय विषय ही हो, इतर लोभ अत्यन्त हेय एवं तुच्छ है। केवल कृष्ण-विषयमें लोभ ही सर्व प्रकारके मंगलका कारण है।"

—'लौल्य' स० तो० १०।११

२५—विषयी लोगोंकी प्रसन्नताके लिये क्या श्रीचैतन्य-शिक्षा विरुद्ध बात स्वीकार की जा सकती है ?

"केवल संसारी लोगोंको सन्तोष करने जाकर क्रमशः अनर्थका उदय होगा, उनके मतमें मत देकर निरवच्छिन्न मायावाद-तरंगमें तैरते रहेंगे। श्रीगौरांग-भक्ति प्रचार करनेके लिये उन सभी संसारी व्यक्तियोंकी निर्दोष सहायता ग्रहण करना अच्छा है। किन्तु उनकी मनस्तुष्टि करनेके लिये श्रीगौरांगकी शिक्षा-विरुद्ध बातोंको स्वीकार करना महान् अन्याय है।"

—'श्रीगौरांग-समाज' स० तो० ११।३

२६—जिह्वा-लालसा क्या भक्ति-प्रतिकूल है ?

-'जिह्वाकी लालसासे जो व्यक्ति भ्रमण करते हैं, उनके लिये कृष्णप्राप्ति अत्यन्त कठिन है।"

—'धैर्य' स० तो० ११।५

२७–कौन-कौन सी द्यूत-क्रीड़ा (जुआ) है ? वह क्या भक्ति-प्रतिकूल है ?

"जहाँ-जहाँ अप्राणी वस्तुके द्वारा क्रीड़ा हो, वही द्यूत-क्रीड़ाका स्थान है। जहाँ ताश, पाशा, शतरंज, दस-पच्चीस रूप जितनी प्रकारकी क्रीड़ा हो, उन स्थानोंको 'द्यूत-क्रीड़ा' स्थान कहा जा सकता है। वर्त्तमान 'लाटरी' गृहको भी 'द्यूत-क्रीड़ा' स्थान कहा

जा सकता है। नल राजा, युधिष्ठिर दुर्योधन, शकुनि आदि राजाओंके इतिहासकी आलोचना करनेसे देखा जाता है कि द्यूत-क्रीड़ा स्थानमें जुआचोरी, कपटता आदि उपायके द्वारा अर्थ लाभके लिये भयंकर कलह और-सर्वनाश हुआ है। अभी भी जो सभी क्रीड़ा मन्दिर हैं, उन सभी स्थानोंमें कई लोगोंके-धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चतुर्वर्गका नाश हो रहा है। जो व्यक्ति इन सभी क्रीड़ामें रत होते हैं, वे लोग भयंकर आलस्य एवं कलह-प्रियता प्राप्त करते हैं। उनके द्वारा कोई धर्म-कर्म नहीं हो सकता।"

—'कलि',ससंगिनी (क्षेत्रवासिनी), स० तो० १५।१

२८—पशु-पक्षी-पालन क्या भक्ति-प्रतिकूल है?

"पशु-पक्षीके प्रतिपालनमें आसक्ति न करेंगे।"

—'भक्तिप्रातिकूल्य विचार', श्रीभा० म० मा० १४।३७

२९—मात्सर्य किसे कहते हैं? मात्सर्य और प्रेम क्या परस्पर विरोधी हैं?

"परसुखमें दुःखी एवं परदुःखमें सुखी होनेका नाम 'मात्सर्य' है। 'मात्सर्य' और 'प्रेम' परस्पर विरुद्ध हैं। जहाँ मात्सर्य हो, वहाँ प्रेम नहीं है एवं जहाँ प्रेम हो, वहाँ मात्सर्य नहीं है।"

—'ब्राह्मणत्व और वैष्णवत्व', स० तो० ४।६

३०—'मात्सर्य' सब रिपुओंमें प्रधान क्यों है?

"काम' क्रोध, लोभ, मोह और मद—ये पाँचों मात्सर्यके अन्तर्भुक्त हैं। क्रोधमें काम है, लोभमें क्रोध एवं काम हैं; मोहमें लोभ, क्रोध एवं काम हैं; मदमें मोह, लोभ, क्रोध एवं काम हैं तथा मात्सर्यमें मद, मोह, लोभ, क्रोध एवं काम—ये पाँचों वर्त्तमान हैं।"

—'मात्सर्य' स० तो० ४।७

३१ - वैष्णव-धर्म निर्मत्सर क्यों है?

"जीवोंके प्रति दया, नाममें रुचि, वैष्णव सेवारूप वैष्णव-धर्म एक ओर एवं मात्सर्य दूसरी ओर विपरीत दिशाओंमें अवस्थित हैं।"

३२—जीवोंकी मुक्ति एवं बन्धन क्या है?

"निर्मत्सरता ही जीवकी मुक्ति एवं मात्सर्य ही जीवका बन्धन है।"

—'मात्सर्य' स० तो० ४।७

३३—मत्सर व्यक्ति क्या जीवोंके प्रति दया-विशिष्ट, वैष्णवोंमें श्रद्धाविशिष्ट एवं तृणादपि सुनीच हो सकते हैं?

"जो व्यक्ति परसुखमें दुःखी हैं, वे कदापि जीवोंपर दया नहीं करते, भगवान्‌के प्रति भी उनमें सरलताका उदय नहीं होता, वैष्णवोंके प्रति उनकी निसर्गजनित घृणा या विद्वेष रहता है। जो मात्सर्यशून्य हैं, वे ही 'तृणादपि' श्लोकका यथार्थ तात्पर्य अवगत हैं।"

—'मात्सर्य' स० तो० ४।७

३४ – कपटी व्यक्ति क्या धार्मिक हो सकते हैं?

"कापट्य परित्यागपूर्वक धर्म आचरण न करनेसे धार्मिक हो नहीं सकते। धर्मके छलसे पाप आचरण कर जगद्वंचक हो पड़ते हैं।"

—'नामबलपर पाप-वृत्ति एक नामापराध है', स० तो० ८।६

३५—भगवद्भक्तको क्या अन्याभिलाषमें दिन-यापन करनेका समय है?

"अपने-अपने ऐहिक लाभसे परितुष्ट होकर परमार्थमें अवहेला एवं शुद्ध भक्ति-धर्मके

हानिजनक कार्यमें दिन-पात करनेका अवसर भक्तोंको नहीं है।"

—'सिद्धान्तरत्न या वेदान्त-पीठक' स० तो० ६।१२

३६—नैयायिक एवं वैशेषिकोंका तर्क क्या फलदायक नहीं है ?

"नैयायिक और वैशेषिक तार्किक लोग जो सभी तर्क करते हैं, वे सभी ही बहिर्मुख विवाद मात्र हैं। चित्तका बल-क्षय एवं चांचल्य-वृद्धिको छोड़कर उससे कोई फल नहीं होता।"

—'प्रजल्प' स० तो० १०।१०

३७—भगवत्तत्त्व-विषयक आलोचनामें तर्क-स्पृहा रहना क्या उचित है ?

"भक्तिसाधक व्यक्ति लोग जब भगवत्तत्त्व या भागवत-चरित्र आलोचना करें, तब वृथा तर्क न हो पड़े, इस विषयमें सर्वदा सावधान रहना चाहिये।"

—'प्रजल्प', स० तो० १०।१०

-जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीव्यास-पूजाका तात्पर्य

कुछ वर्षों पूर्व श्रीव्यासपूजाके अवसरपर परमाराध्यम श्रीश्रीलगुरुपादपद्म नित्य-लीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजद्वारा प्रदत्त वक्तृताका सार-मर्म)

श्रीगुरु-पूजाका नामान्तर ही श्रीव्यासपूजा है। व्यासदेव शिक्षादाता होनेके कारण शिक्षा-गुरु हैं। शिक्षा-गुरु और दीक्षा-गुरु भेद से गुरु दो प्रकारके हैं। अर्चन-मार्गके विचार से सर्वप्रथम गुरुपादपद्मका ही अर्चन करना चाहिये। यद्यपि शिक्षा एवं दीक्षा-गुरु एक ही हैं—"शिक्षा गुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप", तथापि दीक्षागुरुकी पूजा सर्वप्रथम करनी चाहिये। सूक्ष्म रूपसे विचार करने पर देखा जाता है कि मन्त्रदाता गुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। मनन-धर्मसे जो त्राण करें या जो वस्तु द्वारा त्राण किया जाय, वही मन्त्र है। शब्द-ब्रह्म मनन-धर्मसे त्राण करनेके कारण मन्त्रगुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। कृष्णको प्राप्त करने के लिये मन्त्र देनेके कारण मन्त्रगुरुकी पूजा ही सर्वप्रथम करनी चाहिये। सभी शिक्षाओं को ग्रहण कर जो व्यक्ति उन्हें प्रदान करते हैं, वे ही शिक्षा-गुरु हैं।

जो दीक्षा-गुरुकी सेवाशिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही शिक्षा-गुरु हैं। जो दीक्षा-गुरुकी सेवासे विमुख हैं, वे शिक्षागुरु पदवाच्य ही नहीं हैं। वे वैष्णव नहीं हो सकते। क्योंकि उन्होंने दीक्षा-गुरुको मर्यादा देनेकी शिक्षा प्राप्त ही नहीं किया है। ऐसे उपदेष्टा अपने दीक्षा-गुरुके प्रति कैसी वृत्ति अवलम्बन करते हैं ? तब जो यथार्थ गुरु पदवाच्य नहीं हैं,

उनकी बात अलग है। असद् गुरु सर्वदा ही परित्याज्य हैं।

वैष्णव-सेवा ही गुरुसेवा है—"छाडिया वैष्णवसेवा निस्तार पेयेछे केवा।" वैष्णव जैसा चाहते हैं, उनकी इच्छानुसार कार्य करना ही वैष्णवसेवा है। सेव्य वस्तुका प्रीति विधान ही सेवा है, अन्यथा सेवा नहीं होती। अतएव शास्त्रोंमें 'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया'—यह वाणी कही गई है। निर्विचारसे गुरुका आज्ञा-पालन ही शिष्यका एकमात्र कर्त्तव्य है। गुरुकी प्रीति-कामना ही शिष्यका एक मात्र काम्य है; उनके प्रीति-विधानके लिये सत्शिष्य सभी प्रकारकी दुर्दशाका ही वरण करनेके लिये प्रस्तुत हैं।

प्राकृत जगत्में देश-सेवाके लिये जीवन का बलिदान करने वाले व्यक्तिके साथ पारमार्थिक कल्याणव्रती सेवककी तुलना की जाती है। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिये शिष्य का जीवनोत्सर्ग सर्वश्रेष्ठ व्रत है। ऐसा नहीं कर सके, तो शिष्यका शिष्यत्व साधित न हुआ, यही जानना होगा। गुरुपादपद्ममें समस्त समर्पण ही शिष्यका यथार्थ लक्षण है। केवल स्वयं ही नहीं, जगतके सभी व्यक्ति ही मेरे गुरुदेवके सेवक हों, यह विचार ही सत्शिष्यका काम्य है। सत्शिष्य विश्वके श्रेष्ठ सभी पुष्पोंको गुरुसेवामें समर्पण कर देते हैं। इस प्रकारके आत्मसमर्पणकी वृत्ति ही गुरु पूजा या सेवा है। यह वृत्ति अपार्थिव एवं वैकुण्ठ-विचार प्रसूत है। जो लोग जीवन्मुक्त हैं, उनके द्वारा ही गुरुसेवा सम्यक् प्रकारसे हो सकती है। प्राकृत बद्ध-जीवकी प्राकृत-भावधारामें जो आबद्ध हैं, उनके द्वारा गुरु सेवा सम्भवपर नहीं है। सूत-गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्यमें भागवत-आलोचना करने पर उसका श्रवण करनेके लिये सभी ऋषिगण वहां एकत्रित हुए। ब्रह्मज्ञ व्यक्ति भी गुरु सेवकके निकट कृपा-प्रार्थी हैं। हरि-सेवक श्रेष्ठ नहीं हैं, किन्तु गुरुसेवक सर्वोत्तम हैं। अतएव ६० हजार ऋषि लोग गुरुसेवक सूत गोस्वामीके शरणागत होकर भागवत-श्रवण पिपासु हुए थे। गुरुसेवक ऋषियोंके भी मान्य एवं पूज्य हैं।

जो लोग अद्वैत-चिन्ताधारामें अभिषिक्त हैं, वे लोग गुरुतत्व के सम्बन्धमें 'अज्ञान-बोधिनी' ग्रन्थमें लिखित 'अनवगत स्वात्' कहकर गुरुकी अवज्ञा करनेकी शिक्षा देते हैं या शिक्षा करते हैं। वे लोग गुरुको अगुरु या लघुके रूपमें विचार करते हैं। अनगवत या अतत्त्वदर्शी होने पर वे किस प्रकार गुरुपदके वाच्य हो सकते हैं?

आनन्दगिरिके प्रति आचार्य शंकरजीके योगबल-प्रकाशका वृत्तान्त विशेष ध्यान देने योग्य है। पद्मपादका गुरुसेवक आनन्दगिरिके प्रति अवज्ञा प्रकाश करना असंगत हुआ है। श्रीशंकरकी इच्छासे आनन्दगिरिने जिस प्रकार गुरुदेवका स्तव किया था, वह सुनकर सभी लोग ही आश्चर्य-चकित हुए थे। पद्मपादने इसके लिये गुरुसेवकके निकट क्षमा प्रार्थना की थी। गुरुसेवा ही सभी प्रकारके मंगल का कारण है, यह विचार ही स्मरण रखना होगा। पद्मपादका गुरुदेवकी कापालिकके हाथसे रक्षा करना गुरुसेवाका आदर्श है। रामानुजाचार्यके प्रचारसे चोल राजाकी ईर्ष्या एवं उनके वधकी चेष्टा देखकर शिष्य

कुरेशने विचार-स्थलमें जाकर राजाको परास्त किया। जिस शिष्यकी ऐसी विचार-धारा है, उसकी गुरुसेवा ही सफलीभूत होती है। जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके विषयमें भी ऐसी ही घटना हुई थी। श्रीरामानुजाचार्यके त्रिदण्ड-संन्यासके धाराका ही श्रील प्रभुपादजी ने प्रवर्त्तन किया। अतएव उन्हें श्रीरामानुजका द्वितीय स्वरूप कहा जाता है। गुरु सेवाके लिये सर्वस्व-त्याग—आत्मत्यागकी आवश्यकता है। गुरुसेवा करनेसे अपनी सुविधा होगी, आलस्यको सहारा मिलेगा, दूसरे सेवकके ऊपर कर्त्तृत्व किया जा सकता है—यह सेवकका विचार नहीं है। भगवानके प्रिय सेवक या प्रिय व्यक्तिके साथ भजनगोप्य विषय आलोचना करनी चाहिये। अतएव शौनकादि ऋषियोंने श्रीसूत गोस्वामीके निकट चरम मंगलका विषय परिप्रश्न किया था। वेद-वेदान्त उपनिषदादि आलोचना करने पर भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं होता—'आविरिञ्चादमंगलम्'। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपादका 'कैवल्यं नरकायते' विचार जड़ीय ज्ञानकी असारता प्रमाणित करता है।

श्रीमद्भागवतका ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है एवं यहीं ज्ञानकी परिसमाप्ति है। गुरुकृपा बलसे ही श्रीमद्भागवत स्फूर्त्ति प्राप्त होता है। "हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्।" पृथिवी रसातलमें जाय, मैं गुरुदेवके प्रीति-विधान करनेके लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हूँ। गुरुदेवके विरुद्धाचरणमें शिष्यकी दुरवस्थाके ज्वलन्त उदाहरण—अनन्तवासुदेव, सुन्दरानन्द आदि हैं।

गुरुके सेवक हमारे मान्य हैं—'गुरुर सेवक हय मान्य आपनार।' सद्गुरु पदाश्रित सेवक दूसरे सेवकोंको अवश्य ही सम्मान प्रदान करेंगे। गुरुसेवा शिक्षा-दानकारी व्यक्ति ही यथार्थ शिक्षा-गुरु हैं। गुरुसेवाके विरुद्धवादी कदापि शिक्षा-गुरु पदवाच्य नहीं हैं।

आज श्रीगुरुपूजाका दिन है। श्रीगुरुदेव निर्गुणवस्तु—ब्रह्मवस्तु हैं। निर्गुण गुरुपादपद्मके सेवक ही ब्रह्मचारी पदवाच्य हैं। परम कारुणिक निर्गुण गुरुपादपद्मकी ऐसी महिमा है कि वे गुणोंके मध्य आविर्भूत होने पर भी उनकी अप्राकृत सत्ता सर्वदा रक्षित होती है। भगवद्भक्तकी सेवाके लिये प्रकृति एवं सभी मौलिक पदार्थ भी अनुकूल भावापन्न होते हैं। यदि सत्शिष्य किसी प्रकारसे निर्गुण गुरुपादपद्मके साथ संयोग प्राप्त करे, तो मायिक गुण उन पर आक्रमण नहीं कर सकते।

निर्गुण वस्तु श्रीकृष्ण भौम जगतमें आविर्भूत हुए थे। अप्राकृत निर्गुण वस्तुकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। जन्म और मृत्यु प्रकृतिके अन्तर्गत धर्म हैं। 'जन्म' कहने से जिस प्रकार प्राकृत चिन्ताधारा मानस-पटमें तैरने लगती है, आविर्भाव कहनेसे भाषा थोड़ी सी सुस्पष्ट हो जाती है, किन्तु यह भी हृदयमें सन्देहकी सृष्टि करती है। बद्ध जीवोंके उद्धारके लिये ही अपार्थिव निर्गुण तत्त्वका इस जगतमें आविर्भाव होता है। इसलिये श्रील प्रभुपादजीका पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें या निर्गुण क्षेत्रमें आविर्भाव हुआ था। निर्गुण वस्तु निर्गुण क्षेत्रमें ही विचरण करते हैं।

प्राकृत नीति या आदर्श अप्राकृत वस्तु प्राप्तिका सहायक नहीं होता। संसारके

विचारसे जो चरम दुर्नीतिपरायण और आदर्शविरोधी हैं, भगवदाराधनामें यही विशेष गुणरूपसे परिगणित है। गोपियोंका ऐकांतिक श्रीकृष्णभजन ही इसका वास्तव आदर्श है। पारमार्थिक व्यक्तियोंने भगवत्-भागवत सेवा के अविरोधसे सर्वत्र प्राकृत नीतिका विसर्जन किया है। श्रील प्रभुपादजीने आसुरिक समाजके साथ चिरकाल असहयोग मनोभाव प्रदर्शन किया है। वैष्णव-मर्यादा-लंघन वे कदापि सह नहीं सकते थे। अतएव मुक्त पुरुषके लौकिक कौलिक गुरुके अशिष्ट आचरणमें वे साक्षात् रूपसे प्रतिवाद करनेमें भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने मिथ्याके साथ कदापि सहयोग नहीं किया।

अतएव हमें सत्यनिष्ठ निर्भीक शक्तिशाली गुरुपादपद्मके लिये अपेक्षा करना उचित है। मायिक हेय वस्तुको कदापि गुरुरूपसे वरण करना उचित नहीं है। निर्गुण वस्तुके संस्पर्श से हेयत्व विनष्ट होता है—महापुरुषके चरणाश्रय द्वारा जीवकी अनर्थराशि विदूरित हो जाती है। भगवान् एवं भगवद्भक्तका आविर्भाव एवं आविर्भाव-स्थान निर्गुण या अप्राकृत है। महाजन-वर्गकी चित्तवृत्तिके साथ हमें सामञ्जस्य रखना होगा। उनके उपदेश एवं निर्देशोंको अविचारसे सर्वतोभावेन ग्रहण करना होगा। तब ही मंगल होगा, अन्यथा जिस अन्धकारमें हैं, उसीमें पड़े रह जायेंगे।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनूदित)

—●—

प्रचार-प्रसंग

जगद्गुरु श्रीश्रील प्रभुपादजीका तिरोभाव-महोत्सव

गत १६ अग्रहायण, ६ दिसम्बर, सोमवारको विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके मूल प्रतिष्ठाता जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी तिरोभाव-तिथि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ एवं सभी शाखा मठोंमें पाठ, कीर्त्तन, वक्तृता आदिके माध्यमसे पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें प्रातःकाल मंगलारति, श्रीगुरु-वन्दना, श्रीगुरु-परम्परा, श्रीगुर्वष्टक, श्रीप्रभुपादपद्म-स्तवक, श्रीवैष्णव-वन्दना, श्रीपंच-तत्त्व, श्रीरूप-मञ्जरी-पद, महामन्त्र आदि कीर्त्तनके पश्चात् जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजी की अतिमर्त्य-जीवनी पर पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रकाश डाला। शामको आयोजित विशेष सभामें श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रील प्रभुपादजीकी अतिमर्त्य, अप्राकृत जीवनी एवं शिक्षाओं पर प्रकाश डाला। अन्तमें पूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने बड़ा ही मार्मिक एवं हृदयग्राही भाषण दिया। महामन्त्र कीर्त्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

श्रीवसन्त-पंचमीका अनुष्ठान

गत ७ माघ, २१ जनवरी, शुक्रवारको श्रीराधाकृष्णकी वसन्त-पंचमी तिथि समारोहपूर्वक मनाई गयी। इसी तिथि पर श्रीकृष्णने गोवर्द्धनके निकट राधाकुण्ड-तटमें वासन्ती-रास

का अनुष्ठान किया था। उक्त दिवस सरस्वती-पूजा करनेकी भी प्रथा है। इसी तिथि का अवलम्बन कर श्रीगौर-शक्ति श्रीविष्णुप्रिया देवी, श्रीगौर-पार्षद श्रील रघुनाथदास गोस्वामी एवं श्रील रघुनन्दन ठाकुर आविर्भूत हुए थे। इसी तिथि पर श्रीरूपानुग गौड़ीय सम्प्रदायके रसिक-भक्त श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अप्रकट हुए थे। इस दिन शामको आयोजित विशेष सभामें पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने उक्त महाजनोंकी शिक्षा, अलौकिक जीवन-चरित्र एवं अतिमर्त्य व्यक्तित्व पर भावपूर्ण प्रकाश डाला।

श्रीअद्वैत-सप्तमी एवं श्रीनित्यानन्द त्रयोदशीका अनुष्ठान

गत ६ माघ, २३ जनवरी, मंगलवारको श्रीमहाविष्णुके अवतार श्रीश्रील अद्वैताचार्य प्रभुकी आविर्भाव-तिथि एवं १४ माघ, २८ जनवरी, शुक्रवारको स्वयं बलदेवाभिन्न श्रीश्री-नित्यानन्द प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके सभी मठोंमें उपवास, पाठ, कीर्त्तन, प्रवचनके माध्यमसे मनाई गई हैं। उक्त दोनों दिवस ही सवेरे-शाम श्रीश्रील अद्वैतचार्य प्रभु एवं श्रील श्रील नित्यानन्द प्रभुके सम्बन्धमें महाजन रचित पदावलियोंके कीर्त्तनके पश्चात् उक्त दोनों ईश्वर-तत्त्वोंकी भगवत्ता एवं त्रिलोक पावनी चरित्र पर प्रकाश डाला गया।

श्रीश्रीव्यासपूजा-महोत्सव

गत ३ गोविन्द, १६ माघ, २ फरवरी, बुधवार, माघी कृष्णा-तृतीयासे लेकर ५ गोविन्द, २१ माघ, ४ फरवरी, शुक्रवार, माघी कृष्णा-पंचमी तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ एवं सभी शाखा मठोंमें श्रीश्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान एवं महोत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें यह उत्सव समितिके उप-सभापति पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके आनुगत्यमें बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ है। प्रथम दिन कृष्णा-तृतीया बुधवारको जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके अन्तरंग प्रियतम पार्षदप्रवर, श्रीवेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता, अस्मदीय श्रीश्रीगुरुपाद-पद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-तिथिके दिन प्रातः काल मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरु-वन्दना, श्रीगुरु-परम्परा, श्रीगुर्वष्टक, पंचतत्त्व, महामन्त्र आदि कीर्त्तन किये गये। अन्तमें पूज्यपाद श्रीश्रीमद् नारायण महाराजने परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मकी अलौकिक जीवनी एवं अतिमर्त्य चरित्र, शिक्षा आदि पर भावपूर्ण, हृदयग्राही प्रकाश डाला। दोपहरको सभी गुरु-सेवकोंने परमाराध्य-तम श्रीश्रील गुरुपादपद्मके चरणकमलोंमें श्रद्धा पुष्पाञ्जलियाँ अर्पित कीं। शामको आयोजित विशेष सभामें श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारीजीने अपनी श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि पाठ की। तत्पश्चात् श्रीमहामहेश्वरी ब्रह्मचारी एवं श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारीने श्रीश्रीगुरुदेवके सम्बन्धमें अपने हृदयोद्गार प्रकट किये। अन्तमें पूज्यपाद श्रीश्रीमद् नारायण महाराजने श्रीश्रीलगुरुपादपद्म

के विषयमें विस्तारपूर्वक उनके अलौकिक चरित्र, असामान्य व्यक्तित्व, अतुलनीय गुरुनिष्ठा आदि पर ओजस्वी भाषामें प्रकाश डाला।

दूसरे दिन सबेरे-शामको श्रीचैतन्य-भागवत पाठ, महाजन-पदावली कीर्त्तनके पश्चात् श्रीव्यासदेवका जगतको अतुलनीय दान, उनके वचन, विचार, ग्रन्थादियोंकी अपौरुषेयता तथा उनके पूर्णतम आनुगत्यकी ऐकान्तिक आवश्यकता आदि विषयोंपर शास्त्रसिद्धान्तपूर्ण एवं हृदयग्राही प्रकाश डाला गया।

तीसरे दिन कृष्णा पंचमीको प्रातः काल मंगलारति, गुरु-परम्परा, गुरु-तत्त्व, महाजन-पदावली,पंचतत्त्व कीर्त्तनादिके पश्चात् पूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने परमाराध्यतम श्रील प्रभुपादजीके अतिमर्त्य व्यक्तित्व, उपदेश, अलौकिक जीवनी आदि विषयों पर हृदयग्राही एवं ओजस्वी भाषामें प्रवचन दिया। दोपहरको सभी गुरुसेवकोंने श्रीश्रील प्रभुपादजीके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की। शामको आयोजित विशेष धर्म-सभामें श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् परमार्द्वैती महाराज आदि वक्ताओंने श्रीश्रील प्रभुपादजीके विषयमें विविध प्रसंगों पर प्रकाश डाला। महामन्त्र कीर्त्तन कर सभाकी इतिश्री हुई।

यह महोत्सव श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी उपस्थिति एवं आनुगत्यमें तथा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूँचुड़ामें समितिके प्रधान सम्पादक पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके आनुगत्यमें मनाया गया है।

--निजस्व संवाददाता

परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-तिथि पर दीन-हीन दासाधमकी क्षुद्र

पुष्पांजलि

वास्तविक गुरुसेवक ही गुरुदास्यके अधिकारी हैं। किन्तु यह अधम दुर्भाग्यवश गुरुदेवकी सेवाके सुयोगका लाभ न उठा सका। क्योंकि मैं गुरुसेवाका वृथा अभिमान मात्र करता हूँ। इसलिये सबसे पहले आप जैसे परम वैष्णवोंकी कृपा होने पर मैं गुरुदास बन सकता हूँ। आप लोगोंकी कृपा न होने पर गुरुदास होना असम्भव है। आप लोगों ने ही मुझे सेवाका अधिकार प्रदान किया है। बहुत समय तक इस संसारमें भ्रमण करनेके पश्चात् आप लोगोंकी कृपासे मुझे परम सौभाग्यवश ऐसे गुरुदेवका चरणाश्रय प्राप्त हुआ। ऐसा सुन्दर सुयोग प्राप्त करके भी गुरु-कृपा क्या है, मैं यह नहीं समझ सका।

श्रीगुरुदेव भगवान्‌के प्रकाश-विग्रह हैं। किसी समय भगवान् स्वयं प्रकट होकर अपने प्रियजनोंको श्रीचरणकमलोंकी सेवारूपी अमृत प्रदान करते हैं और किसी समय गुरुके रूपमें अपने प्रियजनोंको इस भूतल पर भेज देते हैं। वे ही गुरुदेव बद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। श्रीगुरु-

देव स्वयं आचरण कर जगतके जीवोंको शिक्षा देते हैं। इस संसार-सागरके एकमात्र नौका-स्वरूप श्रीभगवद्-पादपद्म प्रदान कर स्वयं पतवार रूपसे कार्य करते हुए वे उन्हें भव-बन्धनसे पार करा देते हैं। श्रीगुरु-कृपाके बिना साधन-भजन नहीं हो सकता एवं भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। सद्गुरुसे नाम-मन्त्र ग्रहण करने पर ही जीव भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। अपने बल, बुद्धि, विद्या आदिके द्वारा या स्वयं शास्त्रका अध्ययन करनेसे भक्ति प्राप्त नहीं होती। गुरुदेवकी कृपासे समस्त शास्त्र हृदयमें स्वयं स्फूर्त्ति प्राप्त करते हैं एवं शुद्ध नाम भी अपने आप उदित होते हैं।

विषयी जीव गुरुदेवको मरणशील व्यक्ति-विशेष समझकर उनके श्रीचरणोंमें अपराध कर बैठता है। गुरुदेवके श्रीचरणोंमें अपराध होने पर भगवान् भी उसे क्षमा नहीं करते हैं, एकमात्र श्रीगुरुदेव ही कर सकते हैं। किन्तु भगवान्‌के श्रीचरणोंमें अपराध होने पर श्रीगुरुदेव उसे क्षमा कर सकते हैं। श्रीगुरुदेव मूक व्यक्तिको वाचाल एवं लँगड़े व्यक्तिको गिरि-लंघन योग्य बना देते हैं। जिस प्रकार भूसेके कूटनेसे चाँवल नहीं गिलता, उसी प्रकार श्रीगुरुदेवका पादाश्रय कर उनसे मन्त्र-दीक्षादि न ग्रहण करने पर भगवद्भक्ति प्राप्त करना असम्भव है। भक्त, भक्ति एवं भगवान्—तीनों ही नित्यकाल पृथक् अस्तित्वयुक्त होकर वर्त्तमान हैं। अन्यथा जीव सेवा-सुखका आस्वादन नहीं कर सकता। तीनोंको एक समझने पर निर्विशेष-अवस्था ही प्राप्त होगी, सेवा-सुख नहीं। अपने आपको ब्रह्म ज्ञान करनेवाले व्यक्तिका साधन-भजन निष्फल एवं कपटता मात्र है। सब कुछ एक हो जाने पर दास एवं प्रभुका सम्बन्ध कैसे रहेगा? कौन किसकी सेवा करेगा एवं कौन उसे ग्रहण करेगा? अतएव ब्रह्मज्ञानीका साधन-भजन भक्तिविरोधी है। ब्रह्ममें लय होनेमें जो सुख है, उससे अनन्तगुना सुख दास-अभिमानमें है। भगवान् स्वयं गुरुदेवके रूपमें प्रकट होकर अपने इसी गूढ़-धन भक्तिरूपी असीम सुखको हम जैसे मायान्ध पामर जीवोंको प्रदान करते हैं। अतएव गुरुदेवकी अपार महिमाका वर्णन करना मायाग्रस्त हम जैसे व्यक्तियोंके लिये असम्भव है। अतएव आजकी शुभ वेला पर श्रीगुरुदेवसे यही कृपा-प्रसाद चाहता हूँ कि वे जिस प्रेम-भक्तिका नित्यकाल आस्वादन करते हैं, उसीकी एक कणिकामात्र भी यदि मुझे जूठनके रूपमें प्रदान करें, तो मैं अपने आपको धन्य मानूँगा।

मनुष्य शरीर प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। कठिन होने पर भी बड़े सौभाग्यसे प्राप्त हुआ है एवं सद्गुरुका पादाश्रय भी प्राप्त हुआ है। इस पर भी यदि भगवान्‌के नाम-कीर्त्तनरूपी यज्ञमें अपने आपको आहुति न दे सकें, तो हमारे जीवित रहनेकी क्या सार्थकता है? ऐसे सद्गुरुदेव बारम्बार नहीं मिलते जो हमें जन्म-मरणके चक्रसे सदाके लिये छुटकारा दे दें। श्रीगुरुदेवकी अनन्त महिमा एवं असीम गुणोंका वर्णन मुझ जैसा पामर जीव नहीं कर सकता। मैं केवल आप लोग जैसे परम दयालु वैष्णवोंके आनुगत्य एवं आदेशसे यह क्षुद्र पुष्पाञ्जलि अर्पण करने का प्रयास कर रहा हूँ।

हे श्रीगुरुदेव! आप अपने श्रीगुरुदेवकी आज्ञा-पालनमें वज्रकी अपेक्षा कठोर हैं एवं अपने आश्रितजनों पर पुष्पकी अपेक्षा भी कोमल हृदयसे स्नेह करते हैं। आप हम जैसे पामर जीवोंको नित्यकालसे ही अभयदान प्रदान कर रहे हैं एवं सब प्रकारसे आप ही हमारा पालन-पोषण एवं रक्षा कर रहे हैं। आजके दिन आप मुझ जैसे पामर, अधम व्यक्तिपर अपने कृपालोकका छटामात्र भी वितरण करने की दया करें।

दासाधम कुञ्जबिहारी